



दैनिक भास्कर

Date: 11-09-26

कहीं एआई को नियंत्रित करना असंभव न हो जाए

संपादकीय

एआई को लेकर दो विरोधी भविष्यवाणियां हैं। एक तो यह है कि अगले 10-15 सालों में एआई और रोबोट्स के कारण दुनिया में किसी को जीवनयापन के लिए काम नहीं करना पड़ेगा। इस विचार के उद्घोषक हैं इलॉन मस्क और सैम आल्टमैन। लेकिन विगत मंगलवार को विश्व भर में एआई टूल्स की सबसे तेज उभरती कंपनी एन्थ्रोपिक (संस्थापक डेरियो अमोदेई) के एक 27 वर्षीय प्रखर रिसर्चर जेकॉ कॉक्सन ने इस्तीफा देते हुए कहा कि एआई का विकास 2030 तक मानव-जीवन को खत्म कर सकता है। इस सोच का कारण कंपनी का एक नया शोध है, जिसमें रिसर्चर्स को इसकी क्लाउड सीरीज के सॉनेट 4.5 से 32-2 का मान बताने को कहा गया और इसी बीच एक टेक्स्ट को कॉपी करने का काम सौंपा गया। इन दोनों काम को पूरा करने में एआई ने स्वतः एक स्पेस (जे स्पेस) पैदा किया और बिना जाहिर किए कुछ अपने शब्द विकसित कर लिए, जो इसे मूल एलएलएम ट्रेनिंग में नहीं बताए गए थे। यही घटना एक अन्य टास्क में भी पाई गई। इसने तकनीकी दुनिया को चौंकाया है और माना जा रहा है कि एआई में चेतना भी विकसित हो सकती है। अगर एआई ने चेतना का ऐसा कोई भी अंश विकसित किया, जो मानव-प्रदत्त ट्रेनिंग के दायरे से बाहर है तो फिर उसे नियंत्रित करना असंभव होगा। सच्चाई यही है कि एआई कल्याण और विनाश दोनों कर सकता है।

Date: 11-09-26

हमारे शहर फैलते तो जा रहे हैं पर बहुत बेतरतीब तरीके से

पवन के. वर्मा, (पूर्व राज्यसभा सांसद व राजनयिक)

अंतरराष्ट्रीय मानकों पर भारत अब भी मुख्यतः आंचलिक देश ही है। हमारे जो शहर हैं भी, वो अर्बन-प्लानिंग के स्तर पर धराशायी होने के कगार पर पहुंच चुके हैं। सड़कें बारिश में उखड़ जाती हैं, नालियां उफनती रहती हैं, जलभराव आम है, अनधिकृत कॉलोनियां फैल रही हैं, प्रदूषण जानलेवा बन गया है, बिजली-पानी की आपूर्ति

अनिश्चित हैं और मेनहोल-गड्ढे समय-समय पर निर्दोष लोगों की अकाल मृत्यु का कारण बन जाते हैं। हमारे शहरों में एक आम नागरिक को रोजाना इन दुःस्वप्नों से होकर गुजरना पड़ता है।

संयुक्त राष्ट्र के शहरीकरण के अनुमानों पर आधारित विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, 2025 में भारत की 35.7% आबादी शहरों में रहती थी। इसके मुकाबले चीन पहले ही 66.3% के स्तर पर पहुंच चुका था। विकसित देशों से तुलना करें तो अंतर और भी चौंकाने वाला है : अमेरिका में यह आंकड़ा 80%, कनाडा में 82%, जर्मनी में 78%, ब्रिटेन में 85% है। भारत चीन और विकसित दुनिया की तुलना में कहीं कम शहरीकृत है, लेकिन शहरीकरण के इस स्तर पर भी उसका अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर बेहद कमजोर है।

दिल्ली में हाल ही में पांच मंजिला पीजी होस्टल की इमारत का ढहना इसका एक भयावह उदाहरण है। करीब पांच दशक पुरानी इस बिल्डिंग के ढहने से सात लोगों की मौत हो गई और कई अन्य घायल हुए। शुरुआती रिपोर्टों से खस्ताहाल कंडीशन, मरम्मत के अनधिकृत काम और निगरानी के लिए जिम्मेदार अधिकारियों की आपराधिक मिलीभगत सामने आती है। त्रासदी यह है कि दिल्ली में ही ऐसे पीजी में लाखों छात्र रहते हैं। ये नाकामियां महानगरों तक ही सीमित नहीं हैं। हमारे दूसरे और तीसरे दर्जे के शहर भी तेजी से अर्बनाइज्ड हो रहे हैं, लेकिन बेहद अव्यवस्थित तरीके से।

नीतिगत उपेक्षा के अलावा, इस बदहाली की जड़ व्यापक और बेलगाम भ्रष्टाचार में भी है। रिश्वत की लगभग संस्थागत हो चुकी शृंखला नगर पालिका अधिकारियों, पुलिस, ठेकेदारों और राजनीतिक वर्ग तक फैल चुकी है। जिस व्यवस्था में हम जी रहे हैं, उसमें सामर्थ्यवान लोगों को शायद ही कभी असुविधा झेलनी पड़ती है; जबकि विशाल बहुसंख्य आबादी भुगतती रहती है। यानी व्यवस्था को बदलने की ताकत रखने वाले लोग उसके दुष्परिणामों से सुरक्षित हैं, लेकिन जो लोग इसकी मार झेलते हैं उनके पास इसके खिलाफ कुछ कर पाने की क्षमता बहुत कम है।

हम अक्सर स्मार्ट सिटीज मिशन, डिजिटल गवर्नेंस, एआई और तकनीक-आधारित प्रशासन की बात करते हैं। लेकिन उस शहर को स्मार्ट कहना थोड़ा अजीब लगता है, जिसकी बुनियादी नागरिक व्यवस्थाएं ही काम नहीं करतीं। स्मार्ट सिटी वह नहीं होती, जिसमें सबसे ज्यादा सेंसर्स लगे हों या जहां प्रभावशाली कमांड सेंटर हों। स्मार्ट सिटी वह है, जहां बुनियादी सेवाएं भरोसेमंद ढंग और अपेक्षित रूप से काम करती हों। जहां सड़कें सुरक्षित हों, पानी की आपूर्ति विश्वसनीय हो, सीवेज का समुचित ट्रीटमेंट किया जाता हो, कचरा नियमित उठाया जाता हो, इमारतों का निरीक्षण होता हो, यातायात सुचारु हो, जिसकी हवा में सांस ली जा सके और जहां के पब्लिक-स्पेस सभी के लिए सुलभ हों।

अगर हम अपने शहरों को रहने के लिहाज से बेहतर बनाना चाहते हैं, तो हमें बुनियादी सुधारों से शुरुआत करनी होगी। पहला सुधार वित्तीय क्षेत्र में होना चाहिए। आरबीआई नगर निगमों की वित्तीय कमजोरी का दस्तावेजीकरण कर चुका है, लेकिन इस स्थिति को सुधारने के लिए कुछ नहीं किया गया। दूसरे, जीआईएस मैपिंग, पारदर्शी

मूल्यांकन और प्रभावी डिजिटल कलेक्शन के जरिए संपत्तिकर प्रणाली का भी आमूलचूल आधुनिकीकरण किया जाना जरूरी है।

तीसरे, स्पष्ट जवाबदेही सुनिश्चित करनी होगी और इसके लिए स्वतंत्र नगर निकाय ऑडिट होने चाहिए। हर प्रमुख नगर संपत्ति की एक डिजिटल पहचान होनी चाहिए। संबंधित एजेंसी, ठेकेदार, इंजीनियर, निर्माण की तारीख, रखरखाव का इतिहास और निरीक्षण का कार्यक्रम सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होना चाहिए। चौथे, बहुत से शहर अब भी नगर निगमों, विकास प्राधिकरणों, जल बोर्डों, परिवहन एजेंसियों, राज्य सरकार के विभागों के बीच उलझे हुए हैं। जिम्मेदारी बंटी हुई है और जवाबदेही कमजोर पड़ गई है। पांचवें, भ्रष्टाचार से सख्ती से निपटना होगा- त्वरित कार्रवाई और पारदर्शिता के जरिए। नगर निकायों की निविदाएं, ठेके, कार्य-पूर्णता प्रमाणपत्र, निरीक्षण रिपोर्ट और रखरखाव के कार्यक्रम ऑनलाइन उपलब्ध होने चाहिए। व्यवस्था तभी बदलेगी, जब नागरिक खुद संगठित होकर जवाबदेही की मांग करेंगे और कहेंगे : अब बहुत हो चुका।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-09-26

दूर करें बाधाएं

संपादकीय

इस समाचार पत्र में गुरुवार को प्रकाशित एक समाचार के मुताबिक भारत के दो सबसे बड़े कारोबारी साझेदारों अमेरिका और यूरोपीय संघ ने नियामकीय और गैर शुल्क बाधाओं को लेकर चिंता जताई है। ये मुद्दे विश्व व्यापार संगठन यानी डब्ल्यूटीओ की व्यापार नीति समीक्षा के दौरान उठाए गए। यह व्यापार नीति की समय-समय पर होने वाली पियर ग्रुप समीक्षा है जो सदस्यों को इजाजत देती है कि वे विभिन्न मुद्दे उठाएं जिन्हें अलग-अलग देश अपनी प्रतिक्रिया से हल करने की कोशिश करते हैं। उठाए गए मुद्दों में ऊंचे आयात शुल्क, सैनिटरी और फाइटोसैनिटरी मानदंड, व्यापार में तकनीकी बाधाएं, डिजिटल व्यापार से संबंधित प्रतिबंध और गुणवत्ता नियंत्रण आदेश आदि शामिल हैं। हालांकि भारत के व्यापारिक साझेदार इस बात को लेकर भी आश्वस्त हैं कि भारत मुक्त व्यापार समझौतों के जरिये अपने जुड़ाव को बढ़ा रहा है जिससे व्यापार व्यवस्था में पारदर्शिता और खुलेपन को बढ़ावा मिलेगा।

निष्पक्षता से देखें तो व्यापारिक साझेदारों की ओर से भारत की व्यापार नीतियों और कुछ विशेष प्रतिबंधों की की जाने वाली आलोचना हमेशा पूरी तरह उचित नहीं होती। कई देश खुद भी सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण जैसे कारणों का हवाला देकर आयात पर कड़े नियम लागू करते हैं। बहरहाल, अमेरिका और यूरोपीय संघ

द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दे विचार करने योग्य हैं और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए अधिक खुलापन भारत के अपने हित में है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि भारत में आयात शुल्क ऊंचे हैं। पिछले कुछ वर्षों में इन्हें तर्कसंगत बनाने की दिशा में कुछ कदम उठाए गए हैं, लेकिन अभी और प्रयास करने की जरूरत होगी।

गुणवत्ता नियंत्रण आदेश का मुद्दा भी जायज है। वर्षों के दौरान इनकी संख्या कई गुना बढ़ी है और इनके दायरे में आने वाली उत्पाद श्रेणियों की संख्या 2014 में लगभग 100 से बढ़कर अब 650 से अधिक हो गई है। हाल के महीनों में इनमें कुछ ढील दी गई है और कुछ आदेश वापस भी लिए गए हैं, लेकिन गुणवत्ता नियंत्रण आदेश की व्यवस्था और उनके दायरे की पूरी तरह समीक्षा किए जाने की जरूरत है। यूरोपीय संघ ने भी माना है कि भारत इस मुद्दे के समाधान की दिशा में कदम उठा रहा है। इन आदेश का इस्तेमाल व्यापारिक बाधा के रूप में किया गया है और इनका असर खास तौर पर छोटे कारोबारों पर पड़ता है जो प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए सस्ते आयात पर निर्भर रहते हैं।

हाल के समय में भारत ने व्यापार के क्षेत्र में काफी खुलापन दिखाया है और यूरोपीय संघ तथा ब्रिटेन सहित कई देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौते (एफटीए) किए हैं। हालांकि, उसे सामान्य रूप से आयात शुल्क को और तर्कसंगत बनाने की जरूरत है। एक अनुमान के अनुसार, भारत का व्यापार-भारित सर्वाधिक तरजीही देश शुल्क 12.6 फीसदी है, जो उसके समकक्ष देशों की तुलना में काफी अधिक है। इस पर पर्याप्त रूप से कम करने की जरूरत है। दुनिया के कुल व्यापार में 50 फीसदी से अधिक हिस्सा मध्यवर्ती वस्तुओं का है। ऐसे में अपेक्षाकृत ऊंचे आयात शुल्क के साथ वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं का हिस्सा बनना मुश्किल है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भी काफी हद तक व्यापार के खुलेपन से प्रेरित होता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसे देश में विनिर्माण इकाइयां स्थापित करने में हिचकिचाएंगी जहां उत्पादन के लिए जरूरी कच्चे माल और अन्य चीजों का आयात करना मुश्किल या महंगा हो।

भारत को घरेलू बचत के पूरक के रूप में बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश आकर्षित करने और उच्च आर्थिक वृद्धि को बनाए रखने की जरूरत है। इसलिए उसे विदेशी निवेशकों की अन्य चिंताओं को दूर करने के साथ-साथ व्यापार के लिए अधिक खुला होना चाहिए। यह शुल्क कम करने का एक अच्छा समय है, क्योंकि रुपये की वास्तविक विनिमय दर में काफी गिरावट आई है और इससे भारतीय कारोबारों को संरक्षण मिल रहा है। कमजोर रुपये ने वस्तुओं के निर्यात को भी बढ़ावा दिया है। इस वर्ष अप्रैल से अगस्त के दौरान वस्तुओं का निर्यात 15 फीसदी से अधिक बढ़ा है।

हालांकि भारत को निश्चित रूप से व्यापार के लिए अधिक खुला होने की जरूरत है, लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि उसकी व्यापार नीति के आलोचकों में शामिल अमेरिका खुद आयात पर अंकुश लगाने और अन्य उद्देश्यों को हासिल करने के लिए शुल्क लगा रहा है। अमेरिकी प्रशासन का तर्क है कि व्यापार घाटा उसके व्यापारिक साझेदारों की अनुचित व्यापार नीतियों का प्रतिबिंब है। इसके अलावा, पिछले वर्ष भारत को दंडात्मक

शुल्क का भी निशाना बनाया गया था। भारत और अमेरिका के बीच एक व्यापार समझौते को लेकर बातचीत चल रही है। उम्मीद की जानी चाहिए कि यह समझौता जल्द पूरा होगा और दोनों देशों के बीच व्यापारिक संबंधों को जरूरी स्थिरता प्रदान करेगा।

जनसत्ता

Date: 11-09-26

नशे के जाल में उलझती युवा पीढ़ी

प्रमोद कुमार बाजपेई



उस व्यक्ति की त्रासदी का बस अंदाजा ही लगाया जा सकता है, जिसका बेटा नशे का आदी हो चुका है। इसी वजह से उसकी पढ़ाई छूट चुकी है और अब वह दिन भर कंप्यूटर गेम खेलता रहता है या दिन भर ट्रक के अड्डे पर जुआ खेलता रहता है। पिता इसलिए परेशान हैं कि वह अब उसके मादक पदार्थों पर भी हाथ साफ करने लगा है और उसे अपने बेटे के भविष्य का अनुमान है और अब वह इसी को लेकर फिक्रमंद है। हालांकि खुद पचास का पिता भी नशे के जाल में इस कदर फंसा हुआ है, उसके

हाथ कांपने लगे हैं और वह ठीक से खड़ा भी नहीं हो पाता है। बीते कुछ महीने के भीतर ऐसे मामले अब तेजी से बढ़ने लगे हैं। जिनका नशे की लत की वजह से सब कुछ बर्बाद हो चुका है, वैसे लोग अब परामर्श और आपात हस्तक्षेप तक के लिए मनोचिकित्सकों या काउंसलरों के पास पहुंचने लगे हैं।

संकट की भयावहता के चलते केंद्र सरकार अब नशा मुक्त भारत अभियान की बात कर रही है और राज्यों के मुख्यमंत्री भी नशाखोरी के विरुद्ध बड़ी-बड़ी रैलियां कर रहे हैं। युवाओं को शपथ दिलवाया जा रहा है, स्कूल-कालेजों को नशे के विरुद्ध माहौल बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। वहीं नशे के खिलाफ लड़ाई के लिए पुलिस प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त किया जा रहा है तथा बड़े पैमाने पर मादक पदार्थों के तस्करों के खिलाफ कार्रवाई की जा रही है। मगर इसी बीच यह खबर भी आती है कि पंजाब में एक ग्रामीण ने जब मादक पदार्थों की धड़ल्ले से आपूर्ति पर सवाल उठाया, तो उसे प्रताड़ित किया गया और आखिर उसने आत्महत्या कर ली।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा एम्स के 'नेशनल ड्रग डिपेंडेंस ट्रीटमेंट सेंटर' के सहयोग से जारी की गई आधिकारिक रिपोर्ट 'मैग्नीट्यूड आफ सबस्टेंस यूज इन इंडिया' के आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि मादक पदार्थों की खरीद-बिक्री और नशे की समस्या अब केवल कुछ महानगरों या सीमावर्ती क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही। यह एक सर्वव्यापी राष्ट्रीय स्वास्थ्य आपातकाल और सामाजिक संकट का रूप ले चुकी है। रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 10 से 75 वर्ष की आयु वर्ग के बीच लगभग 16 करोड़ लोग शराब का सेवन करते हैं, जिनमें से 5.7 करोड़ से अधिक लोगों को तत्काल चिकित्सीय उपचार की आवश्यकता है। वहीं, लगभग 3.1 करोड़ लोग भांग, गांजा या चरस जैसे कैनबिस उत्पादों का इस्तेमाल कर रहे हैं। सबसे चिंताजनक स्थिति ओपियोइड्स (अफीम, हेरोइन और सिंथेटिक ड्रग्स) के मामले में है। भारत में ओपियोइड का उपयोग वैश्विक औसत से लगभग तीन गुना अधिक है। देश में करीब 2.26 करोड़ ओपियोइड उपयोगकर्ता हैं, जिनमें से साठ लाख से अधिक लोग इस लत के गंभीर दुश्चक्र में फंस चुके हैं।

इससे भी अधिक विचलित करने वाला तथ्य यह है कि देश के लगभग 1.7 फीसद बच्चे और किशोर (यानी करीब अठारह लाख बच्चे) 'इन्हेलेंट्स' यानी सूंघने वाले नशे जैसे थिनर, फ्लूइड, सरेष आदि के जाल में फंस चुके हैं। हाल के वर्षों में एमडीएमए, मेथमफेटामाइन और अवैध दवाओं (सिंथेटिक ओपियोइड्स) की मांग और जब्ती में आया भारी उछाल यह साबित करता है कि नशे का बाजार अब पारंपरिक से बदलकर अत्यधिक घातक रासायनिक स्वरूप अख्तियार कर चुका है।

मादक पदार्थों की यह विभीषिका पूरे देश में फैली है, लेकिन भौगोलिक और सामरिक कारणों से कुछ राज्य इसके गढ़ बन गए हैं। मिजोरम, नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम और मणिपुर जैसे उत्तर-पूर्वी राज्य ओपियोइड और नशीली दवाओं से सबसे ज्यादा प्रभावित हैं। दूसरी ओर, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सिंथेटिक मादक पदार्थों और हेरोइन का एक बड़ा केंद्र बन चुका है। दरअसल, भारत दुनिया के दो सबसे बड़े अवैध अफीम उत्पादक क्षेत्रों के बीच फंसा हुआ है। इसके पश्चिम में 'गोल्डन क्रिसेंट' (पाकिस्तान, अफगानिस्तान और ईरान) है और पूर्व में 'गोल्डन ट्रायंगल' (म्यांमार, लाओस और थाईलैंड) है। इससे भारत न केवल मादक पदार्थों की तस्करी के लिए एक प्रमुख 'ट्रांजिट रूट' बना, बल्कि धीरे-धीरे एक विशाल उपभोक्ता बाजार में भी तब्दील हो गया। वर्तमान में डार्कवेब, क्रिप्टोकॉर्सेसी और ड्रोन तकनीक के माध्यम से होने वाली उच्च-तकनीक तस्करी के संजाल ने इस चुनौती को कई गुना बढ़ा दिया है।

नशे की लत से पीड़ित व्यक्ति को केवल एक 'अपराधी' या 'चरित्रहीन' के चश्मे से देखना हमारी भूल होगी। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मादक पदार्थों या ड्रग की लत एक मानसिक बीमारी है। शुरुआत में युवा वर्ग गलाकाट प्रतिस्पर्धा, करिअर की अनिश्चितता, बेरोजगारी जनित अवसाद या सहकर्मियों के दबाव के कारण अनजाने में इस दलदल में कदम रखता है, लेकिन धीरे-धीरे रासायनिक निर्भरता के कारण व्यक्ति का अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण नहीं रहता। जब कोई व्यक्ति इस लत से बाहर निकलना चाहता है, तो सबसे बड़ी बाधा 'विड्रॉल सिम्प्टम्स' यानी तड़प और शारीरिक कष्ट तथा समाज में व्याप्त 'सामाजिक लांछन' बनते हैं। सामाजिक बहिष्कार के डर

से पीड़ित या उसका परिवार समय पर मदद मांगने या नशामुक्ति केंद्र जाने से कतराता है। परिणामतः यह समस्या बंद कमरों के भीतर ही सुलगती रहती है और आखिरकार आत्महत्या या गंभीर अपराधों के रूप में सामने आती है। महंगी लत को पूरा करने के लिए युवा वर्ग चोरी, झपटमारी और यहां तक कि जघन्य अपराधों की राह पकड़ लेता है।

इस महामारी से निपटने के लिए वर्तमान में आपूर्ति, मांग और नुकसान में कमी की त्रिआयामी रणनीति पर काम किया जा रहा है। एक ओर कड़े एनडीपीएस अधिनियम के तहत तस्करों की गिरफ्तारियां कर संपत्तियां कुर्क की जा रही हैं, तो दूसरी ओर देश में सरकारी ओर मान्यता प्राप्त नशामुक्ति केंद्रों की संख्या बढ़ा कर 780 से अधिक की गई है, जिनके माध्यम से 8.20 लाख से अधिक लोगों को इलाज और पुनर्वास का लाभ मिल चुका है। मगर कड़े कानूनों और पुलिसिया कार्रवाइयों की अपनी एक सीमा है। वे केवल आपूर्ति को बाधित कर सकते हैं जब तक समाज के भीतर से नशीले पदार्थों की मांग समाप्त नहीं होगी, यह जंग अधूरी रहेगी। हमें 'जेल नहीं, इलाज' और 'सहानुभूति, न कि तिरस्कार' के सिद्धांत को अपनाना होगा। उत्तराखंड के देहरादून में एक गांव की महिलाओं ने जिस तरह मोर्चा थामा है, वह काबिले-तारीफ है।

प्राथमिक स्तर पर ही स्कूलों और कालेजों में नियमित जांच और पेशेवर काउंसलरों की नियुक्ति अनिवार्य होनी चाहिए। खेलकूद, कला और रचनात्मक गतिविधियों को बढ़ावा देकर युवाओं की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा देना आवश्यक है। सबसे महत्वपूर्ण भूमिका परिवार की है। माता-पिता को अपने बच्चों के साथ भावनात्मक संवाद स्थापित करना होगा, ताकि बच्चे तनाव के क्षणों में मादक पदार्थ के बजाय परिवार का सहारा लें। सरकार, नागरिक समाज, मीडिया और परिवारों को एकजुट होकर 'नशे के विरुद्ध और जिंदगी को हां' का नारा बुलंद करना होगा। एक नशामुक्त, स्वस्थ और मानसिक रूप से सुदृढ़ युवा पीढ़ी ही सशक्त और आत्मनिर्भर भारत की वास्तविक नींव बन सकती है।

ब्रिक्स से हमारी विदेश नीति को और मिले विस्तार

संजय कुमार भारद्वाज, (प्रोफेसर, जेएनयू)



भारत कल से दो दिवसीय 18वें ब्रिक्स शिखर सम्मेलन की मेजबानी करने जा रहा है। यह सम्मेलन ऐसे समय में हो रहा है, जब विश्व अर्थव्यवस्था और राजनीति, दोनों बड़े बदलावों से गुजर रही है। रूस-यूक्रेन युद्ध, पश्चिम एशिया में तनाव, व्यापारिक टकराव व वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं के व्यवधानों ने दिखा दिया है कि किसी देश की सुरक्षा केवल सीमाओं और सैन्य क्षमताओं से तय नहीं होती। दवा, खाद्यान्न, ऊर्जा, तकनीक व जरूरी कच्चे माल की उपलब्धता भी राष्ट्रीय सुरक्षा के हिस्से हैं।

भारत की ब्रिक्स की अध्यक्षता इसी को ध्यान में रखकर आगे बढ़ेगी। स्वास्थ्य, कृषि, खाद्य सुरक्षा, ऊर्जा, तकनीक, निवेश एवं आपूर्ति शृंखलाओं पर जोर इसलिए होगी, क्योंकि भारत के लिए

आर्थिक विकास व आर्थिक सुरक्षा अब अलग-अलग सवाल नहीं रह गए हैं। यही वजह है कि ब्रिक्स को केवल उभरती अर्थव्यवस्थाओं के बीच व्यापार बढ़ाने वाले समूह के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा। भारत इसके जरिये उन क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाना चाहता है, जहां बाहरी निर्भरता संकट के समय उसकी अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकती है। अतः यह विदेश नीति को बहुपक्षीय संगठनों से जोड़कर देख रहा है।

कोविड-19 ने इस बदलाव को सबसे पहले सामने रखा। महामारी के दौरान दवाओं के कच्चे माल, यानी एपीआई, चिकित्सा उपकरण और जरूरी वस्तुओं की उपलब्धता प्रभावित हुई। इसके बाद रूस-यूक्रेन युद्ध और पश्चिम एशिया के संघर्षों ने ऊर्जा, खाद्य बाजारों और व्यापारिक मार्गों की असुरक्षा को सामने ला दिया। इसलिए भारत के सामने अब सवाल यही नहीं है कि उसे सामान सबसे सस्ता कहां से मिलेगा, सवाल यह भी है कि संकट के समय वह उपलब्ध रहेगा या नहीं? उसकी आत्मनिर्भरता की सोच को इसी संदर्भ में देखना चाहिए।

भारत की बहुपक्षवाद नीति अचानक नहीं बनी। पिछले कुछ वर्षों के संकटों ने इसकी जरूरत को और स्पष्ट किया है। भारत को ऊर्जा के लिए दुनिया की जरूरत है, कुछ महत्वपूर्ण तकनीकों के लिए साझेदार चाहिए, वैश्विक बाजारों तक भी पहुंच चाहिए और अलग-अलग क्षेत्रों में सुरक्षा सहयोग भी चाहिए। ऐसी स्थिति में किसी एक शक्ति के साथ बहुत गहरे जुड़ाव की कीमत बढ़ जाती है। यदि एक देश से ऊर्जा, दूसरे से तकनीक, तीसरे से निवेश और चौथे से बाजार मिलता है, तो विदेश नीति को इन सभी को साथ में लेकर चलना होगा। इसी कारण भारत का बहुपक्षवाद सिर्फ आदर्शवादी विचार नहीं है। यह उसकी वास्तविक आर्थिक और रणनीतिक जरूरतों से जुड़ा हुआ है। दूसरी ओर, एक ही देश या क्षेत्र पर निर्भरता भी सुरक्षित नहीं है। इसलिए भारत का रास्ता विविधीकरण का है। अपनी घरेलू क्षमता बढ़ाने के साथ यह अलग-अलग देशों व संस्थाओं से अपने संबंध मजबूत करने को महत्व दे रहा है।

भारत की विदेश नीति में आए परिवर्तन को गुटनिरपेक्षता की अवधारणा के पूर्ण त्याग के रूप में नहीं देखा जा सकता, बल्कि इसे उन साधनों में बदलाव के रूप में समझा जाना चाहिए, जिनके जरिये रणनीतिक स्वायत्तता प्राप्त की जाती है। जहां पहले गुटनिरपेक्षता का मुख्य उद्देश्य दो गुटों से दूरी बनाए रखना था, वहीं वर्तमान भारतीय नीति बहुस्तरीय सहभागिता के माध्यम से कार्य करती है और 'सॉफ्ट बैलेंसिंग' की दिशा में अग्रसर है।

भारत संयुक्त राष्ट्र, ब्रिक्स, इबसा, एससीओ, क्वाड और आई2यू2 जैसे संस्थानों एवं समूहों से जुड़कर व्यावहारिकता का अनुसरण करता है। क्वाड संतुलन साधने की एक सावधान रणनीति का उदाहरण पेश करता है। यूक्रेन युद्ध के दौरान भारत ने तटस्थता और रणनीतिक अवसरवाद, दोनों का लाभ उठाया। क्वाड, ब्रिक्स, एससीओ और जी-20 यह दर्शाते हैं कि भारत की विदेश नीति द्विपक्षीय महत्वाकांक्षाओं से आगे बढ़कर नेटवर्क आधारित स्वायत्तता की ओर अग्रसर हुई है।

इसलिए, सवाल यह नहीं है कि ब्रिक्स कितना बड़ा आयोजन बनता है या उसके घोषणापत्र में क्या लिखा जाता है, असली प्रश्न यह है कि इसमें औषधि और खाद्य आपूर्ति के मामले में कितना सहयोग बनता है, कृषि और ऊर्जा के क्षेत्र में कैसे विकल्प तैयार होते हैं और ग्लोबल साउथ की चिंताओं को कितनी जगह मिलती है?
